दयानंदलीला

अर्थात्

उन्हीं के ग्रन्थों से उन्की वर्णावस्था का मुँह नीला

जिस्को

पंडित बुलाकीरामशास्त्रीप्रच्छरत शर्मा जी ने

संग्रह कर

मान्यवर पंडितश्री गौरी शङ्कर वैद्य जी को सम-

र्पित किया

और

उक्त पंडित जी महाराज ने अत्यंत हर्ष से

भारत भूषण प्रेस फ़र्रुख़ाबाद में मुद्रित कर सर्व-

साधारण में प्रकाशित किया-

प्रथमवार | संवत् १९४६ वि॰ | मूल्य प्रतिपु॰
पु॰ सं॰ १०००

सन् १८८९ ईसवी

डाकव्यय ॥

दस्तखत तुलसीराम कापीनवीस

भूमिका

॥ श्रीकृष्णायनमः ॥

यत्पादपद्म मकरंद रसाभिषेकात् सच्छास्त्र तत्व मधि गच्छति वालिशोपि ॥ - तीर्त्वा भवाब्धि ममलं पद मेति विष्णोः ताभ्यो नमोस्तु सततं गुरु देवताभ्यः ॥ —॥ —॥

प्रायः इन दिनों में दयानंदियों को यही बड़ी बात मिली है कि गुण कर्म के अनुसार ही वर्ण व्यवस्था मुख्य और यथार्थ होती है- और स्वामीजी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिख भी दिया है कि जाति वर्ण वा कुल की कोई रोक टोक नहीं- शूद्र भी ब्राह्मण बन सकता है और ब्राह्मण शूद्र होसकता है॥

परन्तु यदि वे लोग कुछ भी ध्यान देवें और सद्बुद्धि से विचारें तो शीघ्रही जान लेंगे कि वर्ण व्यवस्था वहीयथार्थ है जोकिशास्त्र में लिखीऔर सनातन धर्मावलंवियों में प्रचलित है— और सत्यार्थप्रकाश में तो स्वामीजीने केवल हमारे (समाजियों के) मनः प्रसन्नार्थ निर्मूल कपोल कल्पना लिखी है सो न माननी चाहिये—

इस बात के सिद्ध करने को अनेक प्रमाण हैं परन्तु दयानंदियों को केवल दयानंद के पुस्तकों का प्रमाण चाहिये क्योंकि उन्की श्रद्धा- भक्ति- रुचि उन्हीं में है प्रत्युत उन ग्रन्थों को आकाश वाणी समझते हैं— एतदर्थ उन्हीं के सत्यार्थ प्रकाश की वर्ण व्यवस्था का खंडन उन्हीं की संस्कार विधि से सम्यक् प्रदर्शित कि-

या जाता है — जिसे साफ २ शीघ्रही उनको दीख पड़े और निश्चय हो जाय - और हठवाद को परित्याग कर बिना समझे बूझे अपने धर्म को न छोड़ देवें किन्तु समाज की पाश से निर्मुक्त होकर स्व २ वर्णों में स्थित रहें और अपना २ कर्म करें —॥—

पुनः दयानंदियों ने वेद का भी कंचुक सर्व साधारण में पहिनने की प्रसिद्ध कर रक्खी है इस लिये इनको वैदिक धर्म की वृद्धि करनी चाहिये न कि कपोलकल्पित मिथ्या मार्ग की क्योंकि सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग करना तो इनका मुख्य नियमही है तो फिर क्यों नहीं सत्य मार्ग की शरण में आते ———

आशा है कि सज्जन पुरुष इस छोटी सी दयानंद लीला की पोथी से महा लाभ उठावेंगे और उनके वास्तवी वाग् जाल का सारांश समझ कर कदापिकाल में उस मत में न फंसेंगे प्रत्युत ग्रस्त पुरुष भी निकल भागेंगे — शम् ॥

अब मैं प्रार्थना करता हूं कि हे परम मान्यवर पंडित श्री गौरीशंकर वैद्यवर महाराज जी यदि आप मेरे पर कृपा दृष्टि करें तो यह ग्रन्थ आपके चरण कमलों में समर्पित है आप मुद्रित कीजिये क्योंकि सिवाय आप के किस को समर्पण करूं मैं आप का ही तो हूं ———

पं० बुलाकीराम शास्त्री महोपदेशक भा· ध· म· मं· और सनातन धर्म प्रचारिणी सभा लाहौर ——

॥अथ दयानंदलीला

उन्की लीला बहुत भारी है तथापि कुछ थोड़ी सी संक्षेप से (नमूने वा वान्नगी के तौर पर) दर्शित की जाती है जिस्में दयानंद सरस्वती के लेख से ही उन्की अपनी मन मानी (गुणकर्मानुसार) वर्ण व्यवस्था का खंडन, और उनके ही दीये हुए प्रमाणों से प्राचीन रीति (जन्मसे ही वर्ण व्यवस्था का मंडन बालक तक सम्यक् जान जावेंगे———

(१) दृष्टि करो द्वितीय सत्यार्थ प्रकाश की पृष्ठ ८५ पंक्ति २७ में लेख है कि वर्ण व्यवस्था भी गुण कर्म स्वभाव के अनुसार होनी चाहिये——

(२) पुनः पृष्ठ ८६ पंक्ति ३ में लेख है कि,, अबभी जो उत्तम विद्या· स्वभाव वाला है वही ब्राह्मण के योग्य है और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है———

(३) पुनः पृष्ठ ८७ पं-१७ में लिपि है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म कर्ते हैं वेही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण- कर्म- स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ हो के नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनाना अवश्य चाहिये———

(४) पुनः पृष्ठ ९६ पं.२ "अर्थात् चारों वर्णों में जिस२ वर्ण के सदृश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वह २ उसी वर्ण में गिनीं जावें——॥——

(५) फिर पृ. ८९ पं. २६ " ये संक्षेप से वर्णों के गुण और कर्म लिखे- जिस २ पुरुष में जिस २ वर्ण के गुण कर्म हों उस २ वर्ण का अधिकार देना ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नति शील होते हैं ——

पाठक महाशयो इस प्रकार एक वार्ता को पांच वेर स्वामीजीने लिखा है परन्तु अब उन सबकी परीक्षा का नियम देखिये जोकि अवश्यही स्मरण (याद) रखने की बात है क्योंकि इसी नियमके साथ स्वामीजीकी संस्कार विधि में तुलना (बराबरी) करनी होगी ——

(६) दृष्टि करो सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ८८ पं. २१ में लेख है कि यह गुण कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिये,, ——

इन सबका भावाशय यही है कि कन्या की १६ वें और और पुरुष की २५ वें वर्ष परीक्षा करे और जैसा २ गुण कर्म स्वभाव जिस २ स्त्री वा पुरुष में हो उस २ स्त्री वा पुरुष को उसी गुण कर्म स्वभाव वाले वर्ण में प्रविष्ट करना - परन्तु १६ वर्ष से पहिले स्त्री और २५ वर्ष से पहिले पुरुष को किसी वर्ण में न गिना जायगा - क्योंकि जब तक कोई लड़का किसी परीक्षा (इमन्तिहान) में उत्तीर्ण (पास) न हो जावे तब तक उस लड़के को उस परीक्षा (इमन्तिहान) की प्रशंसापत्र (सार्टिफ़िकेट) अथवा पदवी (डिगरी) कभी नहीं मिल सक्ती क्योंकि यदि प्रथम मिल जावे तो फिर परीक्षा देनी ही क्यों ——

अस्तु जो कुछ लिखा वही सही परन्तु स्वामी जी ने इस

मन घड़त परीक्षा में सिवाय अपने कपोल कल्पित वाग् जाल के और कोई प्रमाण नहीं लिखा- फिर उन्हीं महात्माओं ने अपनी संस्कार विधि में ऐसे २ सूत्रों के स्पष्ट प्रमाण लिखे हैं कि जिनसे सत्यार्थ प्रकाश के नियमों का चिन्ह मात्र भी स्थिर न रहेगा——— हास्य है स्वामीजी की स्मृति(याद) पर कि जिन्को अपना लेख भी स्मरण न रहा कि सत्यार्थ प्रकाश में क्या लेख किया है- और उसी विषय को संस्कार विधि में उसके विपरीत लिखा- पुनः हास्यातिहास्य है कि दोनों पुस्तकों का एक ही कर्त्ता होवे और एक ही विधान में भिन्नता पड़े- यह वही वार्ता है यथा—

(अंधाधुन्द की दुहाई दिन सके न रात)

देखो संस्कार विधि के नाम करण प्रकरण में क्या परीक्षा की लीला है———

(१) प्रथम की संस्कार विधि के पृष्ठ ३७ पंक्ति २ में लेख है कि जन्म दिन से लैके दसवीं- बारहवीं रात्री- महीना किंवा एक संवत्सर में बालक का नाम धरे" ॥ तथा दूसरी संस्कार विधि के पृष्ठ ५२ पं. १४ में" जिस दिन जन्म हुआ हो उस दिन से लैके १० दिन छोड़ ग्यारहवें वा १०१ एक सौ एकवें अथवा दूसरे वर्ष के आरंभ में जिस दिन जन्म हुआ हो नाम धरे" ॥ इसमें प्रमाण पारस्कर गृह्य सूत्र का प्रथम की संस्कार विधि के पृ. ३७ प. १४ तथा दूसरी संस्कार विधि के पृ. ५२ पं. ६" । दशम्या मुत्थाय पिता नाम करोति" (इत्यादि से) शर्म ब्राह्मणस्य- वर्मक्षत्रियस्य———

गुप्तेति वैश्यस्य (इत्यन्तम्) इसके पहिले का अर्थ ऊपर

लिखा है— ॥ अब अंत लेका सुनिये स्वामी जी ने क्या आनंद किया है——

प्रथम संस्कार विधि की पृ०३८ पं०१० ब्राह्मण के नाम के अंतमें शर्मन्- क्षत्रिय के वर्मन्- वैश्य के गुप्त- और शूद्र के दास-॥ जैसे भद्रशर्मा- भद्रवर्मा- भद्रगुप्त- भद्रदास- इस प्रकार से नाम रक्खे——

तथा दूसरी संस्कार विधि के पृष्ठ ५४ पं० ३" ब्राह्मण हो तो देव शर्मा- क्षत्रिय हो तो देव वर्मा- वैश्य हो तो देवगुप्त- और शूद्र हो तो देव दास इत्यादि———

अब न्याय धारक सज्जन महाशयो विचार करो कि स्वामीजी की परीक्षा तो सत्यार्थ प्रकाश के लेखानुकूल २५ वें वर्ष में होनी चाहिये थी- और संस्कार विधि में १०वें ही दिन नाम रखते हैं और ब्राह्मण आदि को शर्मन् आदि पद (जोकि चारो वर्णों की व्यवस्था को प्रकट करती है) देते हैं और यह आज्ञा सूत्र कारों की है जिस्को स्वामीजी ने भी मान लिया और तदनुकूल नाम भी धर दिये तो इस्से स्पष्ट प्रतीति होता है कि वर्ण व्यवस्था जन्म से ही स्वीकार्य है न कि सत्यार्थ प्रकाश की कपोल कल्पित नई परीक्षा से——

क्यौंकि जब जन्म दिन से लेकर न्यून से न्यून (कम से कम) १० दिन और अधिक से अधिक (ज्यादः से ज्यादः) १ वर्ष की अवधि नाम रखने और पद देने को ऋषियों मुनियों ने लिखी है और उनके लेख को स्वामीजी ने भी अंगीकार कर संस्कार विधि घसीटी है तो इस विषय में अधिक कथन की आवश्यकता नहीं बस जान लीजिये कि सनातन वैदिक-

मत कौन है और कपोल कल्पित मत कौन है——
क्यौंकि आर्य्यों को सनातन वैदिक धर्म की ही वृद्धि करनी उचित है और असत्य दुराग्रह को त्याग सत्य का ही स्वीकार करना उनका मुख्य नियम है— तो फिर क्यौं नेत्रों में पट्टी बांध कर एक पुरुष के कपोल कल्पित वाग् जाल में फंस कर हठ वाद कर रहे हैं— हां यदि स्वामी जी एक गृह्य सूत्र भी नवीन बना जाते तो कुछ न कुछ विधि लग जाती— प्राचीन गृह्य सूत्रों के मानने से तो लज्जा का भार उठा सीस झुकाना ही पड़ेगा- हे आर्य्य वृंदों। सोंचो समझो देखो-भालो- पढ़ो लिखो- साधु संतों की संगति करो निरे २ नबने रहो-

(८) पुनः उपनयन संस्कार में देखिये क्या विचित्र लीला रची है कि बारम्बार पूर्वोक्त वर्ण व्यवस्था को आपही स्वीकार करते चले गये हैं फिर न मालूम सत्यार्थ प्रकाश में क्यौं उसी वर्ण व्यवस्था का नाश कर दिया——
इस से तो स्पष्ट झलकता है कि उन महात्माओं की बुद्धि में कुछ भेद अवश्य था, जिससे अपना ही लेख स्मरण नहीं रहा- क्यौंकि सत्यार्थ प्रकाश के लेख से संस्कार विधि के लेख की साफ २ प्रतिकूलता है- और वही भेद अपने अनुयायियों को भी समर्पण कर गये हैं कि वे महाशय भी पुस्तक द्वय के लेख को आद्योपांत नहीं विचारते- हा शोक ३ हे आर्य गणों जरा कर्ण रंध्रों को साफ और नेत्रपटलों को उघाड़ के इस वर्ण व्यवस्था पत्र को श्रवण करिये— और अवलोकन करिये——

(९) दृष्टि करो कि प्रथम की संस्कार विधि के पृष्ठ ५० पं. १ तथा दूसरी संस्कार विधि के पृष्ठ ६५ पं. १६ में मनु का प्रमाण दिया है " तद्यथा——

ब्रह्म वर्च्च सकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे ॥
राज्ञो बलार्थिनः षष्टे वैश्यस्येहार्थिनोष्टमे ॥—

विद्या- बल- व्यवहार आदि की इच्छा हो तो क्रम से ब्राह्मण- क्षत्री- वैश्य का जन्म वा गर्भ से पांचवे, छठे, और आठवें वर्ष में उपनयन करना चाहिये——

अब विचार करना चाहिये कि यदि २५ वें वर्ष की परीक्षा के पीछे वर्ण व्यवस्था होती तो मनु महाराज ने ब्राह्मण को पांचवें वर्ष में केवल विद्या आदि की प्राप्ति के लिये उपनयन कराना क्यों लिखा? और स्वामी जी ने इस श्लोक को फिर क्यों माना-? यदि माना तो स्पष्ट प्रीतीत है कि जन्म से ही वर्ण व्यवस्था होती है- नहीं तो मनुजी के वाक्य का लोप हो जाय- हां यदि २५ वर्ष से पीछे फिर दूसरी बार संस्कार किया जाय तो स्यात् (शायद) बात बन जाय परन्तु स्वामी जी ने एकही वार लिखा है दूसरी वार तो कोई भी संस्कार नहीं लिखा है- हां एक नियोग (विधवाओं) का लिखा है तोभी विलक्षण चाल का है अतएव उसको सामाजिक भी ठीक २ चरितार्थ नहीं कर्ते तो औरों की क्या गति है इस विषय का विवाही पृथक् है देखलीजिये——

(१०) पुनः देखिये प्रथम की संस्कार विधि के पृ. ५० पं. ५ तथा दूसरी सं. वि. पृ. ६५ पं. ३ से आश्वलायन गृह्य सूत्रों का प्रमाण दिया है——

अष्टमे वर्षे ब्राह्मण मुपनयेत्.।१। गर्भाष्टमे वा।२।
एकादशे क्षत्रियम्३- द्वादशे वैश्यम्४- आषोडशाद्ब्राह्मणस्यान तीतः कालः५- आद्वाविंशात् क्षत्रियस्य- आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य- अतऊर्ध्वं पतित सावित्री का भवंति"-६।।

इन् सब सूत्रों का संक्षिप्त भावार्थ प्रथम की सं.वि.ए.५३ पं. ६ तथा दूसरी सं.वि.ए.६५ पं.१० में यह लिखा है कि जन्म दिन से अथवा गर्भ दिन से आठवें वर्ष में ब्राह्मण का. तथा ११ वें वर्ष में क्षत्री का- और १२ वें वर्ष में वैश्य का उपनय (यज्ञोपवीत) करें -- ब्राह्मण का सोलः(१६) वर्षों से- क्षत्री का २२ वर्ष - और वैश्य का २४ वर्ष से पूर्व २ उपनयन काल होता है - यदि इतने समय के मध्य २ इनका उपनयन न होवे तो ये पतित सावित्रीक अर्थात् गायत्री से रहित हुवे २ पतित होजाते हैं- यह भाषा दोनों पुस्तकों की मिली हुई है——

अब विचार कीजिये कि विना यज्ञोपवीत धारण करने के विद्या पढ़ने का अधिकार ही नहीं होता- क्योंकि स्वामीजी ने यज्ञोपवीत करने से पीछे ही वेदारंभ संस्कार लिखा है तो जब तक वेद का आरंभ ही नहीं किया जब तक वेद आदि सम्पूर्ण शास्त्रों की समाप्ति कैसे होगी और विना विद्या समाप्ति के परीक्षा न होगी और विना परीक्षा के किसी वर्ण का अधिकार ही नहीं दे सकते तो फिर यज्ञोपवीत में पहिले ही किस प्रकार से वर्णों की व्यवस्था होगी——
और दूसरा प्रकार तो कोई हुई नहीं तो न मालूं स्वामीजी ने किस कारण गड़बड़ा चौथ की पर्वी के स्थान कर गड़बड़ा-ध्याय चरितार्थ किया है- स्यात् (शायद) ——

स्वप्न में दूसरा प्रकार लिखा हो तो आश्चर्य नहीं - परंतु स्वप्न की बात भी नहीं बन सकती ——

क्यौंकि सूत्र कारों को निद्रा नहीं थी - यदि कंपोजरोंको दोष दिया जाय तौभी ठीक नहीं क्यौंकि इन् का संशोधन तो स्वामीजी ने आपही किया होगा और फिर भी कंपोजरोंका ही दोष समझो तो उसमें यह आशंका है कि प्रथम वार भूले सो भूले परंच दूसरी वार तो सोच समझ के छपवाई थी उसमें भी क्यौंकर छपा ——

(१२) फिर देखो कि यदि स्वामी जी की कपोल कल्पना हीं मानी जाय तो उन्हीं के लेखानुसार २४ वर्ष तक सब लोग (ब्राह्मण · क्षत्री · वैश्य ·) पतित हो जायँगे तब परीक्षोत्तीर्ण (इम्तिहान में पास) होना किस रोग की औषध होगी ——

प्रत्युत उस से फल तो कहाँ वरन हानि ही होगी ——

जैसे कि एक वैश्य का बालक स्वामी जी के नियमानुसार विद्या पढ़ कर ब्राह्मण बनना चाहता है तो वह २५ वर्ष तक विद्या ही पढ़ता रहेगा - अब आपका प्रशंसा पत्र (सार्टिफिकेट) लेकर ब्राह्मण होना तो कहां प्रत्युत उसको २४ वर्ष व्यतीत होने पर अपने पूर्व अधिकार (वैश्य कुल) से भी पतित होना पड़ा क्यौंकि उसका उपनयन नहीं कियाहै-

एतदर्थ सत्यार्थ प्रकाश की वर्ण व्यवस्था निर्विचार और प्रमाण तथा युक्ति रहित होने के कारण त्याज्य ही है -

प्रत्युत आपही स्वामीजीने पुनः २ ऐसे २ प्रमाण दिये हैं जिन से उन्की ही नवीन कल्पना का खंडन होता है परन्तु विचारना चाहिये —— ॥

(२२) देखो प्रथम की संस्कार विधि पृ.५ पं.१० से लेकर आश्वलायन सूत्रों का प्रमाण ——

अलंकृतं कुमारं कुशलीकृत शिर समहतेन वास सा संवीत मैणेयेनवा ८ जिनेन ब्राह्मणं- रौर वेण क्षत्रिय सा जेन वैश्यम् —— यदि वासांसि वसीरन् रक्ता निवासीरन्-काषायं ब्राह्मणो मांजिष्टं क्षत्रियो हारिद्रं वैश्यः ९ तेषां मेखला: ।१०। मौंजी ब्राह्मणस्य धनुर्ज्या- क्षत्रियस्य-आवी वैश्यस्य ११ ॥ तेषां दंडा: १२। पालाशो ब्राह्मणस्य

दुम्बरः क्षत्रियस्य वैल्यो वैश्यस्य ॥ केश संमितो ब्राह्मणस्य ललाल संमितः क्षत्रियस्य- प्राण संमितो वैश्यस्य”१३॥

इनका अर्थ पृ.५२ पंक्ति १८ में (लिखा) है यथा- बालक को अलंकृत करके शिरके केशादि छेदन अर्थात् वपन कराके सुस्नात करे पीछे नवीन वस्त्र से आच्छादित ऐसी शोभा युक्त शरीर करके शाला में ले आवे ब्राह्मण- क्षत्रिय-वैश्य- मृग चर्म- रोरु का चर्म तथा अजा का इन् चर्मों को वस्त्र के अभाव में धारण करें ॥ ८॥

ब्राह्मण जो वस्त्र धारण करे सो रक्त वा कषाय (गेरू रंगे) वस्त्रों को धारण करें- मंजिष्ठ (मजीठ) को क्षत्रिय- हरिद्र अर्थात् पीले वस्त्र वैश्य धारण करे ९ तथा इन् की मेखला १० मुंजा जो घास किं वा दर्भ की ब्राह्मण- धनुष (तांस) की क्षत्रिय और ऊन की मेखला (कटिबंध, जिस्में कौपीन पहिरी जाती है उनको) वैश्य धारण करे ११ इन् कुमार (ब्रह्मचारी) लोगों के दंड १२ ललाट के केश पर्य्यन्त खड़ा होके नाप

के पलाश का दंड ब्राह्मण- भूपर्य्यन्त गूल र का क्षत्रिय- तथा नासिका छिद्र पर्य्यन्त विल्व वृक्ष का दंड वैश्य धारण करे" १३ ———

विचार करो कि यहाँ पर जो इन कुमार ब्रह्मचारीलोगों को पृथक २ कपड़े अलग २ तागड़ी- और भिन्न २ दंड दिये जाते हैं सो यह किस परीक्षा के अनुसार दिये हैं क्योंकि अभी तक इन लड़कों में विद्या, वल, व्यापार आदि कोई भी गुण अथवा कर्म सब से अधिक नहीं हैं तो फिर क्यों कर सत्यार्थ प्रकाश के लेख के व्यतिरिक्त इनको ब्राह्मण- क्षत्री- वैश्य मान के वस्त्रादि धारण कराये गये— इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि स्वामीजीने सत्यार्थ प्रकाश अपनी उमंगकी तरंग में लिखा है और जन्म से ही वर्ण व्यवस्था मानकर इस विधि में वस्त्र आदि धारण कराये हैं और यही वार्ता उक्त लेख से संघटित भी होती है—

अतः सत्यार्थ प्रकाश कीकथन करीहुई वर्ण व्यवस्था स्वामी जी के लेखही से सर्वथा अमंतव्य है—

(१३) पुनः देखो प्रथम संस्कार विधि- पृ-५६ पं-२९ "वसन्ते ब्राह्मण मुपनयेत् ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यम्" यह शत पथ ब्राह्मण का वचन है- और इसका अर्थ देखो प्रथम सं-वि- पृ-५६ पं-२३ " वसंत- ग्रीष्म और शरद इन ऋतुओं में यथा क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय- वैश्य को उपनयन करावे "॥ तथा दूसरी सं-वि- पृ- ६५ पं-२५ यज्ञोपवीत का समय उत्तरायण सूर्य और (इसके आगे) पृ- ६६ पं- " वसंते ब्राह्मण मुपनयेत् ग्रीष्मे राजन्यं- शरदि वैश्यम्। सर्वकाल-

ने के" ॥ यह शत पथ ब्राह्मण का वचन है ।—अर्थ दूसरी सं. वि. ए. ६६ पं. "ब्राह्मण का वसंत क्षत्रिय का ग्रीष्म और वैश्य का शरद् ऋतु में यज्ञो पवीत करे । अथवा सब ऋतुओं में उपनयन हो सकता है और इसका प्रातः कालही समय है" (२४) पुनः प्रथम सं. वि. ए. ५६ पं. २० "पयो व्रतो ब्राह्मणः यवागू व्रतो राजन्यः। अभिक्षा व्रतो वैश्य: ॥

यह भी शत पथ का प्रमाण है ॥—अर्थ इसका देखो प्रथम सं. वि. ए. ५६ पं. २७ "दूध पीके ब्राह्मण- यव और गुड़ को पतला पकाके क्षत्रिय- दूध, दही, शक्कर इन तीनों को मिलाके वैश्य- तीन २ उपवास करें" ॥ तथा

देखो दूसरी सं. वि. ए. ६६ पं. ७ "पयो व्रतो ब्राह्मणोय- वागू व्रतो राजन्यः अभिक्षा व्रतो वैश्यः" ॥ यह शत पथका वचन है—॥ अर्थ दूसरी संस्कार विधि ए. ६६ पं. ६। "जिस दिन बालक का यज्ञो पवीत करना हो उस से तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये- उन व्रतो में ब्राह्मण का लड़का एक वार वा अनेक वार दुग्ध पान, क्षत्रिय का लड़का (यवागू) अर्थात् यव (जौ) को मोटा दल के गुड़ के साथ पतली जैसी कढ़ी होती है वैसी बना कर पिलावें- और (अभिक्षा) अर्थात् जिसको श्री खंड वा सि खंड कहिते हैं जो दही चौगुना दूध एक गुना तथा यथा योग्य खांड़ केशर डाल के कपड़े में छान कर बनाया जाता है उसको वैश्य का लड़का पीके व्रत करे अर्थात् जब २ लड़कों को भूख लगे तब २ तीनों वर्णों के लड़के इन तीनों पदार्थों हीं का सेवन करें अ-

न्य पदार्थ कुछ न खावें पीवें" ॥

अब यहां पर न्याय दृष्टि और सरल बुद्धि से यदि विचार करो तो सम्यक् प्रतीत होवेगा कि वर्ण व्यवस्था जन्म से ही होती है क्योंकि यज्ञोपवीत से प्रथम ही बिना वर्ण निर्माण किये व्रत किस तरह से किया जावेगा— यदि ऐसे कहो कि बालकों के माता पिता की जाति से वर्ण कल्पना कर लिया तो इस कथन से सत्यार्थ प्रकाशी वर्ण व्यवस्था का खंडन स्वय मेव हो गया— और सनातनी वर्ण व्यवस्था जिसको कि हम कथन कर रहे हैं अर्थात् जाति जन्म से ली जाती है सो भली भांति आपके मुख से भी सिद्ध हो गई फिर आप अनर्थक जगड्वाली के वाग् जाल से एक नई व्यवस्था क्यों बनाते हो—

भला एक और भी आश्चर्य्य देखो कि क्या लीला प्रकट होती हैं——

(१५) देखो सत्यार्थ प्रकाश दूसरे की पृ. ३४५ पं. २० "और जो ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष में कि जिस समय एक घड़ी भर जल न पीवे तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है- व्रत करने वालों को महा दुःख प्राप्त होता है—

विशेष कर वंगाले में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी दुर्दशा होती है इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में दया न आई नहीं तो निर्जला का नाम सजला—

और पौष महीने की शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम निर्जला रख देता तौ भी कुछ अच्छा होता परन्तु इस पोप को दया

से क्या काम२ "कोई जीवो वा मरो पोप जी का पेट पूरा भरो" गर्भवती, वा सद्यो विवाहिता स्त्री, लड़के वा युवा पुरुषों को तो कभी उपवास न करना चाहिये" इत्यादि लिखा है॥

अब यहां पर न्यायी जन विचार करें कि एक दिन के व्रत लिखने से श्री वेद व्यास जी को निर्दयी और कसाई आदि दुर्वचन लिखे हैं——

परन्तु बड़े शोक की बात है कि जिस बुद्धि से दयानंदने श्री वेद व्यास जी को ऐसी २ गालियां निकाली हैं वही बुद्धि उनकी संस्कार विधि बनाने के समय कहां चली गई थी — क्योंकि जब एक दिन के उपवास लिखने वाले (वेद व्यासजी) निर्दयी- कसाई ठहरे तो तीन दिन के उपवास लिखने वाले (कपट कषाय वेषी दयानंद जी) को क्या कहिना चाहिये——

सज्जन जनों ने पीछे पढ़ ही लिया है कि प्रथम की संस्कार विधि पृ. ५६ पं. २७ में——

स्पष्ट लिखा है कि "दूध पीके ब्राह्मण- यव और गुड़ को पका कर क्षत्रिय- दूध- दही- शर्करा इन तीनों को मिलाके वैश्य तीन२ उपवास करें" अब कहिये दयानंद जी की दया कहां गई- हां ठीक है इन का तो नाम ही दयानंद है "चाहो दया करें न करें नाम में तो दया बनी ही रहेगी—

फिर देखो दूसरी वेर कुछ दया तो आही गई परन्तु उसके साथ ही उससे बढ़ कर निर्दया भी कर दिखाई —

(२६) क्योंकि दूसरी संस्कार विधि पृ. ६६ पं. ६ "जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करे उस से तीन दिन अथवा

एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये"

यहां पर 'तीन दिन अथवा एक दिन' 'तीन वा एक व्रत' इतनी तो दया की (अर्थात् पहिली संस्कार विधि में केवल तीन दिन लिखे थे दूसरी में साथ अथवा लगा कर एक दिन का व्रत लिख दिया (याने जरूरी तीन दिन की शरत तोड़ कर अखतियारी शरत करदी)"" जिसका जी चाहे वह तीन दिन व्रत करे और जिसका न चाहे वह एक दिन व्रत करे) —— और अधिक निर्दया क्या करी-॥

उसको दूसरी संस्कार विधि की पृ. ६६ पं. २६ में देखो-अर्थात् जब २ लड़कों को भूख लगे तब तीनों वर्णों के लड़के इन तीनों पदार्थों (दूध-जौ-गुड़-दूध-दही-सक्कर) ही का सेवन करें अन्य कुछ न खावें पीवें" क्या ही पत्थर गेर दिया है कि सिवाय इन चीजों के और कोई वस्तु न खावें पीवें-नाम तो दयानंद रखा परन्तु दया से दूर ही रहे-क्योंकि स्वामी जी की दोनों संस्कार विधियों के अनुसार (जैसा पीछे लिखा है) ब्राह्मण का यज्ञोपवीत गर्भ वा जन्म दिन से ५वें वा ८वें वर्ष और वसंत ऋतु (चैत-वैशाख) में और क्षत्रिय का गर्भ वा जन्म दिन से ६। वा ग्यारःवें वर्ष और ग्रीष्म ऋतु (जेठ-आषाढ़) में-और वैश्य का गर्भ वा जन्म दिन से ८वें वा १२वें वर्ष और शरद ऋतु (अस्सू-कार्तिक) में करना चाहिये——

अब ब्राह्मण और वैश्य को तो रहिने ही दो एक क्षत्रिय के बालक का हाल देखो——

जबकि छटे वा ११वें वर्ष जेठ-आषाढ़ के दिनों में राजपुत्र (क्षत्रिय) को उपवास-व्रत करावें और केवल यव (जौ) गुड़ की रूड़ी के सिवाय और कुछ उसको खाने पीने को न देवेंगे तो उसकी तृष्णा

(व्यास) कहाँ जायगी- अथवा इस पूर्वोक्त बात के लिखते ऊवे स्वा-
मीजी को अपने सत्यार्थप्रकाश का लेख "(जिस समय एक घड़ी भ
र जल न पीवे तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है——
और फिर (गर्भवती- वा सद्यो विवाहिता स्त्री, लड़के वा युवा पुरुष
को तो कभी उपवास न करना चाहिये) भी याद न आया—॥ सच्च-
तो यह है कि आप जो चाहें सो करें खण्डन तो औरों ही का करना है-
परंतु जो दयानंदी लोग जिस चसकीली दमकीली बुद्धि और खट-
पटी चाल और उच्चसल्लाप से औरों का खण्डन (चाहे हो चाहे न हो)
चट पट करने को कमर कसते हैं- और जब वे लोग दयानंद के पुस्त
कों को पढ़ते वा सुनते हैं तब उनकी वह बुद्धि कहाँ चली जाती
है-।- इससे तो यह श्लोक उन्के ऊपर बऊत ही घटता है- यथा-
खलः सर्षप मात्राणि पर छिद्राणि पश्यति
आत्मनो बिल्व मात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति—
खल पुरुष पराये सर्षप सदृश छिद्र को देखा करते हैं- और बिल्व
सदृश जो अपना छिद्र चौड़े में दिखता है उसको नहीं दृष्टि करते हैं-
भला जो हो सो हो अब आप ही लोग कहें कि दयानंद सरस्वती के
नाम में तो सरस्वती पद था परन्तु जब वे सरस्वती को हृदय-
में भी धारण करते तो कदापि काल में ऐसे २ पूज्य महर्षियों को ढ-
र्वचन न निकालते तथापि हमें तो उन्के सन्यासाश्रम का भय-
भी इन व्यास जी के बचनों से ही है कि जिस्से इनको कुछ नहीं क-
ह सकते परंतु ऐसा कौन पुरुष होगा कि दयानंद जी के ग्रन्थों का
लेख (जोकि उनोंने दुर्वचनों से भर रखा है) देख के विदलित
चित्त न हो जाय और असु ात न होते हों जब यह बात है तो
उन (दयानंद) के (वास्ते) जो कुछ कहा जाय सो भी ठीक है—अस्तु-

अब इस अप्रकरणकवार्ता कोयहींछोड़ताहूं ॥

(२७) पुनः देखो उसी वर्ण व्यवस्था के विषय में प्रथम सं. वि. पृ. ५९ पं. २२ में पारस्कर गृह्य सूत्र का प्रमाण दिया है। 'भवत्पूर्वो ब्राह्मणो भिक्षेत्। भवन्मध्या ँ राजन्यो- भवदंत्या वैश्यः ॥ इसका अर्थ । प्रथम सं. वि. पृ. ६६ पं. २३ में "भिक्षा मांगती बखत (भवान् भिक्षां ददातु) ऐसा वचन बोलके ब्राह्मण (भिक्षां भवान् ददातु) ऐसा क्षत्रिय और (भिक्षां ददातु भवान्) ऐसा वैश्य बचन बोलके तीनों ब्रह्मचारी भिक्षा मांगें- तथा शूद्र भी भिक्षा मांगें" ॥—

तथा दूसरी सं. वि. पृ. ७७ पं. ३० में लिखा है 'ब्राह्मण का-बालक यदि पुरुष से भिक्षा मांगे तो (भवान् भिक्षा ददातु) और जो स्त्री से मांगे तो (भवती भिक्षां ददातु) और क्षत्रिय का बालक (भिक्षां भवान् ददातु) और स्त्री से (भिक्षां भवती ददातु) और वैश्य का बालक (भिक्षां ददातु भवान्) और (भिक्षां ददातु भवती) ऐसा वाक्य बोले, इत्यादि अनेक लेख केवल दयानंद ने ही अपने संस्कार विधि में सूत्रों के प्रमाण और हिन्दी अर्थों में लिखे हैं यदि किंचित्मात्र भी ध्यान दिया जाय तो निःसंदेह प्रत्येक समाजी के मन से सत्यार्थप्रकाश की वर्णव्यवस्था निर्गत होके सनातनी वर्णव्यवस्था का बोध ठीक २ मन में दृढ़ हो जाय और उसी को मानें भी और है भी वुही ठीक- किन्तु दयानंद के, सत्यार्थ प्रकाश का लेख केवल कपोलकल्पित और निर्मूल है प्रत्युत अपने वाग्जाल में तेली, तंबूली, कुम्हार- कहार- काछी- किसान- सुनार- कलाल आदि को उच्च पद पर बालू की भीत बनाई है- बरन अपनी करतल से अपनी पझंचाने के लोभ से अपने पंथ चलाने के

अर्थ केवल

गरदनरेती है ———

पूर्ण आशा है कि जो सच्चे सत्यमताभिलाषी दयानंदी हों गेवे इस छोटी सी पुस्तक से भी बड़ा लाभ उठावेंगे- और अपने सनातन धर्म से पतित न होंगे किन्तु पक्षपात छोड़ यथार्थ सार को गृहण कर स्वस्व वर्ण धर्मानुसार परमेश्वर का श्रवण स्मरण और पूजन कर इस असार संसार सागर से तर जायँगे फिर कभी इस जन्म मरण को धारण न करेंगे ——— शमिति ———

धन्यवाद ———

हम शुद्ध अन्तःकरण से कोटिशः धन्यवाद देते हैं ———

श्रीयुत वैद्य वर पंडित श्री गौरी शंकर शर्मा जी को कि जिन्हों ने इस कलि काल में भी अपने सनातन धर्म की रक्षा में तन मन धन समर्पण करके समस्त नूतन मतावलम्बियों का पूर्ण - चूर्ण कर पाखंड मत पंक को सकलंक कर निर्मूल करने का भार उठा रखा है और समस्त सनातन धर्मियों के पूर्ण अवलंबन भये हैं परमेश्वर ऐसे २ महात्माओं को चिरंजीव रक्खे और सदैव जय देता रहे ———

बुही पं॰ बुलाकीराम शास्त्री-

अमृतसरः पुर वासी मातुल कुल लब्ध-

सर्व सुखराशिः श्रीवल्लभ पद

सेवी

॥ शास्त्री बुलाकिरामोजयति ॥